अंतरा-शब्दशक्ति

आठवाँ फेरा

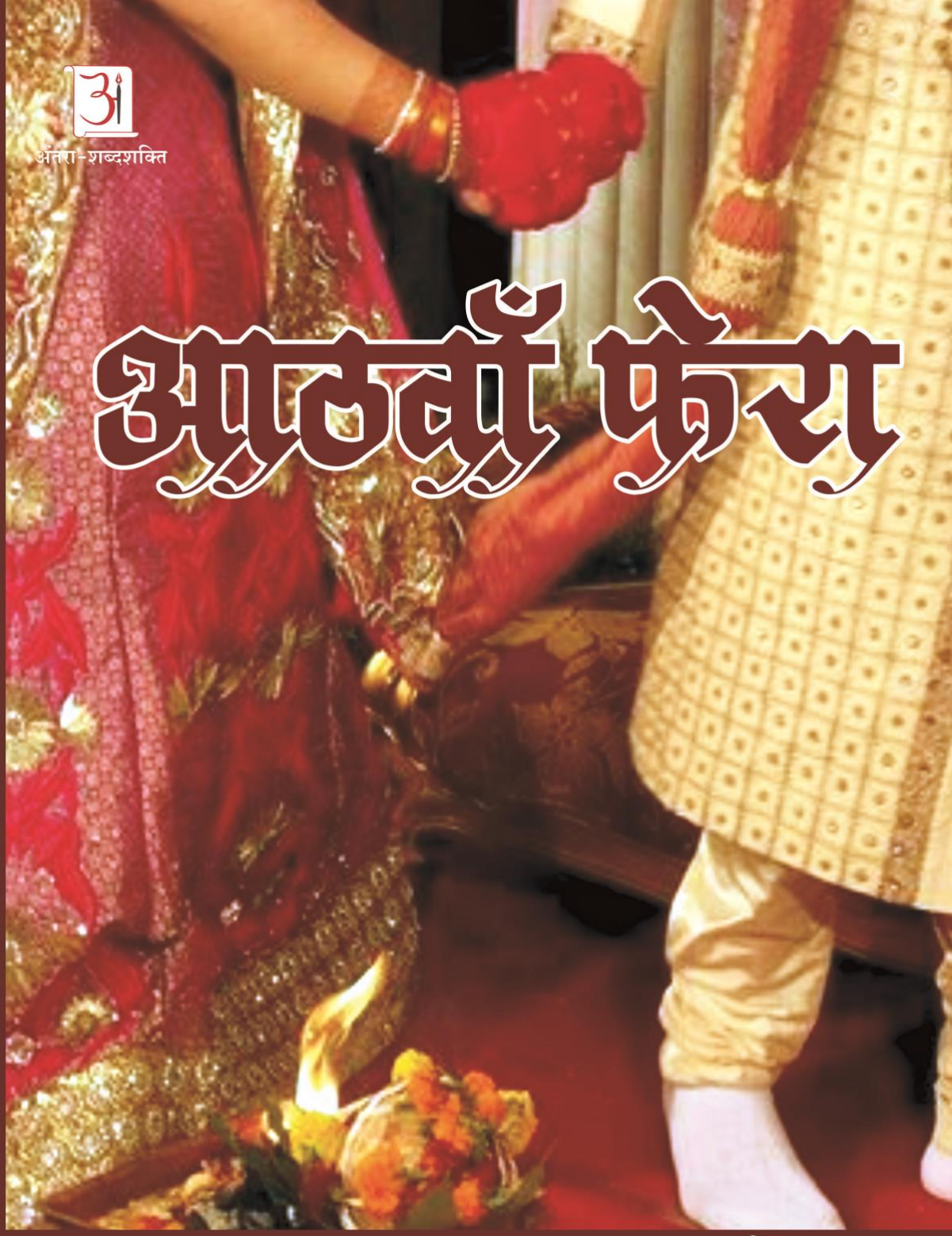

लघुकथा संग्रह

वर्षा अग्रवाल

आठवाँ फेरा

(लघुकथा संग्रह)

वर्षा अग्रवाल

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-86666-45-1

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८ - वर्षा अग्रवाल

मूल्य - ४००० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Athwan phera by Varsha Agrawal

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अपनी बात

सतसइया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

यूँ तो उक्त पंक्तियाँ महाकवि बिहारी की पुस्तक "दोहा सतसई" के लिये कही गई हैं। लेकिन लघुकथा के कलेवर पर भी लागू होती है। लघुकथा "छोटा कथ्य बड़ा भाव। "गागर में सागर" तो नहीं भर सकी हूँ मैं, किंतु साहित्य के विस्तृत फलक में मेरी लेखनी उन पारिवारिक, सामाजिक छोटे-छोटे पहलुओं की ओर आकर्षित होती है जिन्हें अक्सर नज़र अंदाज कर दिया जाता है। व्यक्तिगत रूप से यह मेरी पहली किताब है। जो भयमिश्रित आनंद के साथ सभी सुधि पाठकों को समर्पित है। इसमें संग्रहित कथाओं को आप अपने आस-पास ही पायेंगे।विनम्र अपेक्षा इतनी कि यदि कोई एक भी कथा आपके हृदय पर दस्तक दे तो ये सुमधुर गूँज मुझ तक भी पहुँचा दीजिएगा। मैं प्रतीक्षा करूँगी आपकी समीक्षा की।

वर्षा अग्रवाल

अनुक्रमणिका

1.	जिंदगी बाकी है अभी	5
2.	त्रिया चरित	5
3.	ताकर नाम भरत अस होई	6
4.	गुम गई चूँ-चूँ	7
5.	आठवाँ फेरा	8
6.	जड़ का अस्तित्व	9
7.	टका रुपया	10
8.	भैया	11
9.	मरीचिका	12
10.	असगुन	14
11.	कश्मकश के पार	15
12.	भूख का स्वाद	16

जिंदगी बाकी है अभी

ट्रेन रुकी। मेरे मायके के उस छोटे से स्टेशन पर मेरे अलावा एक दो यात्री ही उतरे,और अपनी राह ली। मैंने जैसे ही सामान एक तरफ किया, मुझ अकेली के साथ सामान देखकर दौनों ओर से दो कुली मेरी ओर लपके। पचास रुपये तय कर मैंने उनमें से नौजवान कुली को सामान उठाने का इशारा किया। दूसरा कुली जाने के लिये मुड़ा तो वह उससे बोला... "चच्चा, जे बैग तुम उठाय लेऔ।" "अरे ! देखने में तो तुम हट्टे कट्टे हो। तुमसे दो नग नहीं चलेंगे? रहने दो। मैं दूसरा कुली कर लूँगी।"

वह घबराकर जल्दी से बोला... "बहन जी,आप गलत समझ रही हैं। आपने जो तय किया है, वही देना। हम आपस में बाँट लेंगे।" लोग दूसरे का हक मारकर भी डकार नहीं लेते,यह गरीब बाँटने की बात कर रहा है।

मैं अचकचा गई। "क्या मतलब...?" " बहनजी, बारह बज रहे हैं। ऊपर से चिलचिलाती धूप। सवेरे से एक भी सवारी नहीं मिली। बाँट लेंगे तो दौनों घरों में चूल्हा जल जायेगा। मैं तो एकबारगी भूख सह भी लूँगा, पर चच्चा कल आने लायक नहीं रह जायेंगे।"

त्रिया चरित

"अरे! सारा दूध निकल गया, अगर खड़े होकर नहीं औंटा सकती थी तो आँच तो धीमी कर देनी थी। रोज-रोज दूध का गिरना अच्छा भी तो नहीं होता।" रसोई में पहुँच कुछ रोषपूर्ण आवाज में बोली विधि। "जरा सा दूध ही तो निकला है, कौन सा पहाड़ टूट पड़ा, जो आपने आसमान सिर पर उठा रखा है।"

लगभग चीखती हुई सी देवरानी चढ़ बैठी विधि पर। "भाभी! आप तो बस बहाना ढूँढती रहती हो मुझे सुनाने का। जैसे मुझे कुछ नहीं आता। बेवकूफ हूँ न मैं तो। जब देखो तब नीचा दिखाने में लगी रहती हो। चलो आज किस्सा ही खत्म कर देती हूँ। न नौ मन तेल होगा न राधा रानी नाचेंगी।"

कहते हुए विधि की देवरानी ने माचिस उठा पल्लू को दिखा दी। छह महीने पुरानी देवरानी का ये तेवर देख सन्न रह गई विधि। "पागल हो क्या" कहते दौड़कर उसके पल्लू को अपने हाथ से मसल दिया। सिंथेटिक साड़ी के टुकड़े हाथ से चिपक गये। अपने जले हाथों को देख दुःख से दोहरी हुई विधि धीरे से बड़बड़ाई,. “अब कभी इसके मुँह नहीं लगूँगी। वरना इसमें और मुझमें फ़र्क़ ही क्या रह जायेगा।”

ताकर नाम भरत अस होई

"वानर सेना कहाँ हो? आओ जरा, सामान उतरवाओ।" बच्चों को आवाज़ लगाता राकेश घर में घुसा तो पड़ोसी मनेसर को बैठे देखा। "प्रणाम भैया" बोल पाँव छू अंदर चला गया। "खुश रहो" तो कहा, लेकिन बुरा से मुँह बनाकर बोला... "काकी ! तुम्हारे तीनों बड़े बेटे तो सेना में जाकर देश की सेवा कर तुम्हारा और गाँव का नाम रोशन कर रहे हैं। एक ये राकेश ही निखट्टू निकल गया। यहीं पड़ा है। खेती-बाड़ी तो सम्हाल लेता है न?" "न मनेसर! ऐसा मत बोल। मेरा राकेश निखट्टू न है। इंजीनियरिंग पास है। इसकी तो नौकरी भी लग गई थी पचास हजार रुपये महीने की दिल्ली में। लेकिन इसने हमारी खातिर छोड़ दी। और सुन.....मेरे तीनों न चारों बेटे देश की सेवा कर रहे हैं।"

"काकी ! पहेलियाँ न बुझाओ। साफ़-साफ़ बताओ। ये कौन से देश की सेवा में लगा है?" “मनेसर, वो तीनों भारत माँ की सेवा में प्राण-प्रण से तत्पर हैं। और ये अपनी माँ की सेवा में। इस घर में भी तो एक देश बसता है। जिसके हर मोर्चे को ये अकेला सम्हालता है। मजाल है जो इस घर की सरहद की ओर कोई आँख उठाकर भी देख ले। देश की खातिर बलिदान होने में मेरा कोई बेटा पीछे न हटेगा। लेकिन इसका बलिदान तो सबसे बड़ा है। क्योंकि ये ही है जो अपने भाइयों के साम्राज्य की भरत बनकर रक्षा कर रहा है।।"

गुम गई चूँ-चूँ

मुंडेर पर खूब सारी चिड़ियों को देखकर ही दाना डाला था मैंने। लेकिन दाना यूँ ही पड़ा था छत पर। ये चिड़ियाँ चुग क्यों नहीं रहीं चुग्गा? मेरी बेचैनी बढ़ती जा रही थी । छिप कर देखने लगी, कदाचित कारण पता चल जाये। कि एक नन्ही गौरैया आकर दाना चुगने लगी। चलो एक तो आई। सुकून के उस अहसास को मैं संजो भी न पाई थी कि एक बड़ी गौरैया आई, और उसे चोंच मार-मार कर अपने साथ उड़ा ले गई। मैं हैरान- परेशान।

"अरे ! ये इसको अपने साथ ले क्यों गई? मैं मन ही मन बड़बड़ाई।"

"मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै। जैसे उड़ि जहाज कौ पंक्षी फिर जहाज पै आवै।।" पूरे दिन मेरी स्थिति इन पंक्तियों जैसी रही। अन्ततः बिस्तर पर भी गौरैया को साथ ले मैं सोने की कोशिश करने लगी।कि सहसा पंख फड़फड़ाने की आवाज सुनाई दी। अरे! ये तो वही गौरैया है सुबह वाली। मैं उसे देखते ही खिल उठी। ये मेरे पास क्यों आई है? मेरी ओर देखकर गम्भीर स्वर में गौरैया बोली.... " तुम सुबह से परेशान हो न, कि मैंने छुटकी को तुम्हारा दाना क्यों नहीं चुगने दिया? मेरी छुटकी गर्भ से है। तुम स्त्री होकर भी नहीं जानती कि ग्रीष्म में बाजरे से चिड़ियों के गर्भ गिर जाते हैं।" तुम जैसों की इसी अज्ञानता के कारण हमारा कुनबा दिन ब दिन छोटा होता जा रहा है। जंगल तो ख़त्म कर ही दिये, हमसे आँगन भी छीन लिये। तुम्हें याद होगा अपना बचपन। जब हम आँगनों में फुदक-फुदक रोटी के टुकड़े चुनते चूँ-चूँ की मीठी धुन गुनगुनाते अपनी चौपाल लगाते थे।हर आँगन गुलजार रहता था हमसे। अपनी संस्कृति से दूर होकर तुम अपना तो सर्वनाश कर ही रहे हो, जल्द ही हमें भी किताबों में ही पाओगे।" कह वह फुर्र से उड़ गई ।

आठवाँ फेरा

"मंगला ! सो गई क्या?" "नहीं जी, कहो कुछ चाहिए क्या?" "नहीं..... बस तुझसे बात करने को जी चाह रहा था।" "आपकी तबियत ठीक नहीं है। आप तो सोने की कोशिश करो।" " नहीं, आज कहने दे अपनी बात मुझे। पता नहीं फिर मौका मिले न मिले। हमने जीवनभर एक-दूसरे का साथ और सुख-दुःख मिलकर निभाये। तूने मेरी कभी कोई बात नहीं काटी। हमेशा मेरा मान रखा। लेकिन मैं तेरा गुनहगार हूँ। और तेरी बात न मानने का खामियाजा आज भुगत रहा हूँ। तूने कितना समझाया। ये पान,तम्बाकू, गुटखा मत खाओ। ये भी एक तरह का नशा ही है। और नशा कोई भी हो बर्बाद करके ही छोड़ता है। मुँह के कैंसर की जड़ तो यही है। जान तक के लाले पड़ जाते हैं। एक इंसान के साथ पूरा परिवार तबाह हो जाता है। किन्तु मेरी अक्ल पर तो पत्थर पड़ गये थे न। कैसे समझ आता? मुझे तो इसे खाने में अपूर्व आनन्द मिलता था। मैं तो इतना आदी हो गया कि तेरी कसम खाकर भी तुझसे छिपकर ये सब खाता रहा। हाय ! विधाता, चुटकी भर सद्बुद्धि दे देता तो ये दिन न देखना पड़ता।"

"अजी, छोड़ो भी इन बातों को। अब क्या फायदा ये सब याद करके, कष्ट ही होगा।" मंगला का हाथ अपने हाथ में लेकर.... "अच्छा सुन, मेरी एक आखिरी इच्छा पूरी करेगी? वचन दे मुझे।" दुःखी होकर... "तुम कहो तो.... तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं करूँगी, तो किसकी करूँगी? मेरा और कौन बैठा है इस दुनिया में।" "तो सुन, अग्नि के सात फेरे लेकर मैं तुझे तेरे घर से विदा कराकर लाया था। तू भी आठवाँ फेरा लेकर उसी अग्नि से मुझे मेरे घर से खुशी-खुशी विदा करना।" "ये कैसी बातें कर रहे हो जी, कुछ नहीं होगा आपको।" "पहले बता,इतना करेगी न? अगर तुझे कुछ हो जाता तो तेरा कारज मैं करता न, फिर तू क्यों नहीं? आखिर अर्द्धांगिनी है मेरी तू। जीवन

से जुड़े हर पहलू की आधी हिस्सेदार।" "ऐसी बातें मत करो जी। कलेजा हलकान हो रहा है।" "देख, ये तो तुझे करना ही होगा। वचन दे मुझे।"

"पर.....घर, परिवार, गाँव, समाज सब.....? कौन करने देगा मुझे ये कारज?" "वो सब तू जाने। मेरा आखिरी मंगल तेरे हाथों ही होगा मंगला।" और बातें करते-करते उसका हाथ मंगला के हाथों में ठंडा पड़ गया। "इनका अंतिम संस्कार तो मैं ही करूँगी।" सभ्य शालीन बहू को इस तरह बोलते सुन सब सकते में थे। लेकिन निर्लिप्त, निर्विकार सी सबके विरोध को दरकिनार कर, अपने निर्णय पर अडिग पति को कन्धा दे चल दी मंगला, पति का आखिरी मंगल करने।।

जड़ का अस्तित्व

"अभी हमारी शादी को दिन ही कितने हुए हैं विनय? हमने न अभी जिंदगी को जिया है न रिश्तों को। फिर भी मम्मी जी की जिद के कारण ये निर्णय भी लिया है न हमने। अब ये सोनोग्राफी की जिद। मैं नहीं कराऊंगी सोनोग्राफी, कहे देती हूं।" बहू के ऊँचे स्वर कानों में पड़े तो सामने से आती सासू माँ बोली- "बहू, सोनोग्राफी तो करानी पड़ेगी तुझे। हमारे खानदान में किसी बहू ने छोरी न जनमी और मुझे अपने खानदान की नाक न कटानी। वैसे भी छोरियों से वंश न चलता। वंश तो छोरे ही चलावें हैं। चल जा तैयार हो जा,अस्पताल जाने को।"

सास की बात सुन, तमतमाये चेहरे और तल्ख आवाज में बोली स्वाती,....." मम्मी जी एक बात का जबाव दे दो आप मेरे को। आप भी किसी की छोरी हो, और मैं भी। जो जड़ का ही अस्तित्व मिटा दोगी तो वंशबेल कहाँ पनपाओगी?"

टका रुपया

"अरे! विमला, आओ-आओ,... आकाश के रिसेप्शन में नहीं आई तुम?"

"हाँ भाभी नहीं आ पाई, इसीलिए तो आज आई हूँ। बहू की मुंह दिखाई करने। कहाँ है बहू....? वैसे भाभी....आपके यहाँ तो लग ही नहीं रहा कि लड़के की शादी हुई है?" "क्यूँ भई,.....?" बीना हंसते हुए बोली। "लड़के की शादी में दुल्हन ही तो लाते हैं। वो देखो आ गई मेरी प्यारी सी दुल्हन। बताओ है न सुंदर सलौनी सी।" विमला के पैर छू बहू अंदर चली गई।

बीना विमला का इशारा समझ गई थी सो बोली, "अब बताओ विमला,.... तुम क्या कहना चाह रही हो?" वो,... भाभी,... कुछ नहीं,... मैं तो बस कह रही थी कि घर खाली खाली सा लग रहा है। कुछ लेन- देन नहीं हुआ क्या शादी में? अपना आकाश तो (आई .ए. एस.) है न फिर,..... कहीं लवमैरिज तो नहीं है आकाश की,...?"

"विमला,... विमला,... थम जरा। आकाश की बहू हम सबकी पसन्द है। मुझे अपने अनमोल बेटे के लिये बहू भी अनमोल ही चाहिए थी। जो सौम्य स्वभाव हो, रिश्तों को मान देने वाली और उनकी गर्माहट को समझने वाली हो। मेरे आकाश की सच्ची अर्धांगिनी बन उसे उसके हिस्से का विस्तार दे सके। पैसे की गर्मी तो हमारे पास ही बहुत है। इसलिये हमने आकाश की टका रुपये में शादी की है। समझी की नहीं.....?

लो इसी बात पर मुँह मीठा करो।" विमला भौंचक्की सी, बीना की ओर देखती धीरे से बुदबुदाई.... "अरे, आई.ए.एस.बेटे को कोई कैसे टका रुपये में दे सकता है?"

भैया

"कौन हैं आप,किससे मिलना है ?" "अरे ! तू गुड़िया है न, पहचाना नहीं मुझे?" प्रणाम चाची का स्वर सुन पलटी तो पीछे मम्मी खड़ी थीं। "अरे विजय ! आओ... तू भूल गई क्या बेटा ? ये तेरे विजय भैया हैं इटावा वाली ताईजी के बेटे।" मम्मी के अंतिम शब्द उसके कानों में शीशे के मानिंद पड़े।

ताईजी, और उसका घर लगे हुए थे। पड़ोसी होकर भी दौनों परिवारों का अपनापन किसी से छिपा नहीं था। जंगल अधिकारी ताऊजी का इटावा तबादला हुआ तो ताईजी उसे और छोटी को अपने साथ ले गईं। ताईजी की कोई बेटी न होने के कारण गुड़िया दुलारी थी उनकी। ताईजी का बंगला और हरियाया जंगल उसे खूब भाया। कभी अमराइयों में कोयल के साथ कूकती तो कभी तितलियों के पीछे भागती। कभी भोर में पंख फैलाये मोरों को नाचते देख मंत्रमुग्ध हो अपलक देखती रह जाती मानो जागते हुए सपना जी रही हो। एक दिन ... "गुड़िया,मैं जरूरी काम से जा रही हूं थोड़ी देर में आ जाऊंगी। देख,घर में ही रहना और छोटी का ध्यान रखना।" कह ताईजी चली गईं।

"गुड़िया,.... "जी भैया!, एक गिलास पानी दे जा तो। और वह पानी ले चल दी। कमरे में अंधेरा पा, "भैया कहाँ हो आप, कुछ दिख नहीं रहा। लाइट जला दूँ?" "अरे! आ जा, मैं बेड पर हूँ। और लाइट मत जला। चुभती है आँखों में। सिर में दर्द भी है जरा बाम तो मल दे।" और नौ साल की गुड़िया सरल भाव से बाम लगाने लगी कि अगले ही पल अंधेरा छा गया उसकी आँखों के सामने। अब वो भैया के शिकंजे में थी और बलिष्ठ हाथ उसके कोमल शरीर पर रेंग रहे थे। छटपटाती गुड़िया की आवाज भी गूँगी हो गई थी। छूटने की उसकी हर कोशिश नाकाम हो रही थी कि सहसा गाड़ी की आवाज सुन भैया की पकड़ ढीली हो गई, हवा की तरह सरक गई गुड़िया। सीधे ताईजी के कमरे जा लगी वही सुरक्षित स्थान लगा उसे। ताईजी को देखते ही

लिपट गई उनसे। “ताईजी हमें घर भेज दो। मम्मी के पास जाना है।” “अच्छा भेज दूँगी। क्या हुआ? उसे सहमी देख ताईजी ने पूछा।” बच्चियां हैं माँ की याद आ रही होगी सोच ताईजी ने शाम को ही उन्हें घर भिजवा दिया। माँ को देख सहमा हुआ रुका आवेग फूट पड़ा गले लगकर। अब आपको छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगी। माँ को सच बताने की हिम्मत न जुटा सकी। अपरिपक्व मन यहीं चूक हो गई। वक्त ने मुरझाई गुड़िया के घाव पर भी मलहम का काम किया, और ये घृणित अहसास पीछे छूट गया। आज, इतने सालों बाद ताईजी,इटावा, विजय, सुन वो कुत्सित चेष्टायित पल जीवंत हो उठे। मन ही मन उन हाथों को अपने बदन पर रेंगता महसूस कर रही थी। घृणा से भर गई। हुँऽऽऽऽ.....भैया.....? “बेटा पानी नहीं लाई भैया के लिये।” मम्मी की आवाज पर तन्द्रा टूटी उसकी। “हाँ लाई, कह पानी उसने छोटी के हाथों पानी भिजवा दिया।

मरीचिका

चारों ओर गन्दगी का साम्राज्य।कहीं सुअर लोट लगा रहे थे,तो कहीं अन्य जानवर स्वच्छन्द मलमूत्र विसर्जन में तत्पर थे।बदबू के कारण पल भर भी ठहरना मुश्किल था वहाँ। घाट की सीढ़ियाँ उतरते लाला जी वहाँ का दृश्य देख रोष से भर उठे ..... "इससे ज्यादा गंदला की चड़युक्त जल शायद ही किसी और घाट पर होगा? अगर ये आपका ब्रह्मघाट है तो फिर कोई बैकुंठघाट भी होगा। जो आनेवाले तीर्थयात्री को सीधे बैकुंठ ही पहुँचाता होगा। ये क्या मजाक है पंडा जी? इस नरक में स्नान करेंगे? गंगा स्नान को आये हैं। बैकुंठ जाने नहीं लालाजी का पारा सातवें आसमान पर था। "अरे.. रे.. रे ! नाराज क्यों होते हैं जजमान ! परवी का समय है। सारे घाट स्नानार्थियों से अटे पड़े हैं। सुना तो होगा आपने, भीड़ में कितने बच्चे हर बरस कुचल जाते हैं। कितनों की जेब कट जाती है। पलक झपकते सामान चोरी हो जाता है। हम तो आपकी सुविधा के लिये इस एकांत घाट पर ले आये थे।

चलिये उन्हीं किसी घाट पर चलते हैं।" फिर सबने दूसरे घाट पर जा जैसे-तैसे डुबकी लगाई, क्योंकि निमित्त तो गंगास्नान ही था, किन्तु मन सबका खिन्न था।

नहा-धो कपड़े पहन जैसे ही लाला जी तैयार हुए, प्रतीक्षारत पंडा जी तुरन्त बोल उठे..... "जजमान ! अब तो इहलोक-परलोक दौनों सुधर गये आपके। लख चौरासी के चक्रव्यूह से भी बाहर आ गये,अब हमारे सेवा-सत्कार की बारी है।" कहते हुए पंडा ने अपनी दान-दक्षिणा की छपी हुई सूची लालाजी के हाथों में थमा दी। "जजमान सेवा इसी सूची के अनुसार होगी।" सूची पढ़ते ही लालाजी भड़क गये,..... " क्या अंधेर मचा रक्खी है। कोई हिसाब है कि नहीं? लूटने पर तुले हो। हम नहीं आये थे आपके पास, आप ही पीछे पड़ गये थे हमारे।" सीधी उंगली से घी न निकलते देख पंडा ने तेज आवाज में हाँक लगाई.... " अरे, ओ किसना, ओ मुरली, अइयो तो। देख जे लाला दिनदहाड़े चकमा दे रहा है। नहान ध्यान का भाव-ताव कर रहा है।" उसकी आवाज सुन चार, पाँच लड़के लाठी ले घेर कर खड़े हो गये लाला परिवार को। बच्चे डर के कारण माँ के पीछे छिप गये।लाला जी की पत्नी इशारे से कहने लगी, दे दो न,और पीछा छुड़ाओ इनसे। देखो बच्चे कैसे सहम गये हैं। स्थिति की गम्भीरता भाँप लालाजी ने पंडा को मनमानी दक्षिणा दी और धर्मशाला का रुख किया।

बेचारी पत्नी रास्ते भर लालाजी की खीज और कोपभाजन बनती रही। "बड़ी लगी थी तुम्हें गंगा स्नान की। हो गई आत्मा शुद्ध। कर लिया स्नान? कमा लिया पुण्य? घूम लिया तीर्थ? कुछ नहीं, सब मरीचिका है। कितनी अव्यवस्था, प्रदूषण फैला है यहाँ। ये गंगा मैया है? सबकी गंदगी धोते स्वयम ही गन्दी हो गई हैं। ऊपर से ये धर्म के ठेकेदार।" वितृष्णा के भाव लिये लालाजी कहे जा रहे थे। "काश ! नदी को नदी ही रहने देते तो आज न इसकी ये गत होती न हमारी।"

असगुन

माँ का आकस्मिक निधन तोड़ गया था सबको। रिटायर पापा और दो छोटे भाइयों के चेहरे देखती तो कलेजा मुँह को आ जाता। कैसे चलेगा घर बिना माँ के? सोच-सोचकर परेशान थी काजल। कुछ दिन बीतते घर की जिम्मेदारी मौसी ने ले ली थी। पास ही घर था मौसी का, और वो अपने तीन छोटे बच्चों के साथ मौसा जी की अनुकम्पा नियुक्ति से अपना घर चलाती थी। कुछ महीने बीतते काजल ने भाई की शादी तय करा दी। र में खुशी का माहौल छा गया। अब बारी आई नेगचार करने की। कौन करे ?

शादी में सगुन के काम करने के लिये काजल के मौसी को आगे करते ही ताई-चाची भड़क गईं। "ऐ काजल ! सगुन के काम तो कोई सधवा ही करे है। शशि कैसे करेगी? ऐसा कर तू बड़ी बहन है, तू कर ले।" क्षोभ और क्रोध से भीतर तक हिल गई काजल। माँ के जाने के बाद उसी शहर में रहते हुए भी इन्हीं चाची ताई ने मुड़कर सुख-दुख नहीं पूछा था। आज सगुन-असगुन की बात।

अड़ गई काजल, "नहीं ताई जी।सगुन के सारे काम तो मौसी ही करेंगी। इन्होंने ही अपने छोटे बच्चों का समय चुराकर हमारे घर को सम्हाला है।" इतनी देर से मौन मौसी अचकचा कर बोलीं,... "बेटा, क्या कह रही है। मैं कैसे,..? "मौसी, कल तुम्हारे बच्चों की शादी होगी, तब किससे करवाओगी सगुन?"

कश्मकश के पार

"क्या करूँ...? बात करूँ अम्माँ से।" "तुझे ऐसा क्यूँ लगता है कि वह विश्वास करेंगी तेरी बात पर? वह तो पहले ही नापसंद करती हैं तुझे। अब इतने सालों बाद आईं भी हैं तो बेटा खोने पर।" "बात तो ये भी ठीक है, लेकिन इसमें मेरी क्या ग़लती जो उनके बेटे ने मुझे पसंद कर लिया।" "कारण जो भी हो, मुँह की खाने के लिये भी तैयार रहना।" "अब कुछ भी हो, बिना कोशिश किये हार नहीं मान सकती मैं।

पिछले दिनों जिस मानसिक प्रताड़ना से गुज़री हूँ, उसे अभी नहीं कह पाई तो कभी नहीं कह पाऊँगी।माँ हूँ दो बेटियों की। पार तो पाना ही होगा।" अंतर्द्वंद्व से जूझती, रसोई समेट, दूध का गिलास ले अम्माँ के कमरे का उढ़का दरवाज़ा धकेलने ही वाली थी कि माँ-बेटे की बातचीत सुन ठिठक गये क़दम..."अम्माँ...काव्या से कहो, सामान बाँध ले और मेरे साथ कानपुर चल कर रहे। अब यहाँ रखा ही क्या है उसके लिये। बच्चियाँ छोटी हैं और ज़माना ख़राब। मेरे बच्चों को भी चाची के रूप में माँ मिल जायेगी। कारज निबट गया। कल को तुम भी गाँव चली जाओगी। ये यहाँ अकेली..?"

"चुपकर,...तनिक भी शर्म-लिहाज़ नहीं है तुझे। तेरी तो आँख का पानी भी सूख गया है। सब देख रही हूँ मैं तेरी करतूतें। तेरी मंशा भी समझ रही हूँ। और तेरे वो नालायक धींगड़े....। अब उन्हें माँ की नहीं बीबी की ज़रूरत है। अब तू भी कान खोलकर सुन ले,...इस मुग़ालते में मत रहना कि वह अकेली है। अभी मैं ज़िंदा हूँ।" "अम्माँ ! पर तुम तो उसे नापसंद,..

गहरी साँस लेकर... "नहीं, नापसंद नहीं। उनकी शादी को लेकर नाराज़ ज़रूर थी। लेकिन अब इन तेरह दिनों में इतना तो जान ही गई हूँ कि वह बेचारी तो हम माँ-बेटे के अहं बीच गेहूँ संग घुन की तरह पिसती रही। अब और नहीं.... इससे आगे नहीं सुना गया उससे। दरवाज़े को धक्का दे सजल आँखों से सासू माँ के पैरों में झुक बोली..." अब मैं अनाथ नहीं रही।"

भूख का स्वाद

"पट्टू" लम्बा-चौड़ा पट्ठा जवान। गाँव भर में आवारागर्दी करता फिरता। न कोई काम करता, न उसे बूढ़ी माँ पर दया आती। बाप तो बचपन में ही पीछा छुड़ाकर भाग गया था। आखिकार तंग आई अम्मा ने एक आस के साथ उसके पैरों में ब्याह की बेड़ी डाल दी। पर उसका वही रवैया रहा, स्वच्छन्द विचरण। परसी थाली देखकर अक्सर अम्मा से झगड़ पड़ता। "ये क्या रूखी-सूखी बेस्वाद रोटी परोस देती हो, मुझे नहीं रुचता। तब अम्मा दुःखी होकर कहती.... "नासपीटे! खा ले, जो मिल रहा है। स्वाद रोटी में न होता, भूख में होवे है। ऊँट हो गया, पर किसी काम का नहीं। उसपर नखरे तो देखो इसके। अरे सुन ! बहू के पाँव भारी हैं।मेरे लिये न सही अपनी औलाद के लिये तो कर्त्तव्य कर।" पर उसके कानों पर जूं तक न रेंगी। "तू है न अम्मा।" कहकर चलता बना।

आखिरकार उसके निकम्मेपन को रोती छम्मो भी नन्ही सी जान अम्मा को सौंप स्वर्गवासिनी हो गई। आज आँखों के सामने नवजात बेटी का भूख से रो-रोकर हलकान हुआ चेहरा घूम गया, जिसे अम्मा ने अपने लटके सूखे स्तन से चिपकाकर चुप कराया था। विचलित होकर निकल पड़ा था घर से, सर पर गमझा बाँध। साँझ पड़े लौटा तो नल पर हाथ-मुँह धो छाले पड़े हाथों से जैसे-तैसे कौर तोड़ मुँह में डाला तो अम्मा की कही बात अटक गई मन में। जो आज उसे बेझर की बेस्वाद रोटी भी स्वादिष्ट लग रही थी। बेसाख्ता मुँह से निकल गया,.." अम्मा, आज रोटी बड़ी स्वाद बनाई हो।"

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - वर्षा अग्रवाल

जन्म - 21 नवम्बर 1969, शिकोहाबाद (फ़िरोजाबाद) उत्तरप्रदेश।

शिक्षा - एम.ए. संस्कृत, एम. फिल

पता - 3/377 हरीओम नगर, पैरिस रोड़, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001

मो. - 9258016490

प्रकाशन - 1. अभिव्यक्ति (साझा काव्य संग्रह)
2. साहित्य उदय (साझा लघुकथा संग्रह)
3. दीप देहरी पर
4. लघुत्तम महत्तम लघुकथा के परिंदे की
5. लघुकथा रजत श्रृंखला (1)
6. लघुकथा कलश (लघुकथा का महाविशेषांक)
7. पल्लव (साझा लेख संकलन)
इनके अतिरिक्त आखर मुक्ता, शब्द गंगा, नव पल्लव, अग्रज्योति, अग्रवाल संदेश आदि पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशन।

सम्मान - साहित्य शिखर, काव्य साधक, लघुकथा श्री, काव्य करुण सम्मान- उद्दीपन प्रकाशन द्वारा। शब्द कुंज सम्मान - शीर्षक साहित्य परिषद द्वारा।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

मातृभाषा वैचारिक महाकुम्भ
www.matrubhashaa.com

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-86666-45-1

मूल्य- 40/-